का नातेदार था इसलिए उसके साक्ष्य को नामंजूर किया जाना चाहिए । इस अभिवाक् में स्पष्टतया कोई सार नहीं है । नातेदारी के कारण साक्षियों के परिसाक्ष्य को यांत्रिक रूप से नामंजूर नहीं किया जा सकता है । साक्ष्य के मूल्यांकन के स्थापित मापदंड में यह अपेक्षित होता है कि ऐसे साक्षियों के साक्ष्य का निर्धारण सावधानीपूर्वक किया जाए । वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य का विश्लेषण ध्यानपूर्वक तथा सावधानीपूर्वक किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा भी ऐसा ही किया गया है ।

32. उपर्युक्त स्थिति के होते हुए साक्षियों के अभिकथित स्वार्थपरकता संबंधी अभिवाक् में भी कोई सार नहीं है । अपील को किसी भी दृष्टिकोण से देखने पर उसमें कोई सार प्रतीत नहीं होता अतः हम उसे खारिज किए जाने का निदेश देते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

ज.

---

**[2007] 3 उम. नि. प. 189**

## यमुना शंकर शर्मा

बनाम

## राजस्थान राज्य और अन्य

9 जनवरी, 2007

**न्यायमूर्ति (डा.) अरिजीत पसायत और न्यायमूर्ति एस. एच. कपाड़िया**

**सेवा विधि – अस्थायी नियुक्ति – नियमितीकरण का दावा – अपीलार्थी द्वारा विश्वविद्यालय में अस्थायी नियुक्ति होने के बावजूद लंबी अवधि तक निष्कलंक सेवा करना और लगभग एक दशक के बाद उसकी सेवा-समाप्ति – उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं है कि उसका नियमितीकरण नहीं किया जा सकता किन्तु लागू नियमों के अनुसार मानदंड का अनुपालन करते हुए उसके मामले पर विचार किया जा सकता है और चयन प्रक्रिया के समय उसकी पूर्व सेवा को सम्यक्**

**महत्व दिया जाना चाहिए तथा अधिक आयु के आधार पर उसे नियमितीकरण से वंचित नहीं किया जाना चाहिए और चूंकि अपीलार्थी को विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की समिति की सिफारिशों के अनुसार यू. जी. सी. का वेतनमान मंजूर किया गया था इसलिए अधिक संदाय की वसूली संबंधी नोटिस संधार्य नहीं है ।**

अपीलार्थी को उदयपुर विश्वविद्यालय में, जिसका नाम बदलकर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय कर दिया गया था, तदर्थ आधार पर सहायक आचार्य के नियमित वेतनमान में नियुक्त किया गया । उसका नियमित आधार पर चयन न होने पर उसकी सेवा समाप्त कर दी गई । इसके लगभग नौ मास के अंतराल पर उसे फिर से विधि सहायक के पद पर नियुक्त किया गया । बाद में ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के कारण उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं । उसकी अनुपस्थिति इस कारण थी कि वह दिल्ली विश्वविद्यालय में पीएच.डी. करने चला गया । अपीलार्थी द्वारा पीएच.डी. डिग्री अर्जित करने के पश्चात् उसे अंतरिम व्यवस्था के रूप में विधि सहयोजक नियुक्त कर लिया गया । उसकी नियुक्ति को समय-समय पर बढ़ाया गया किन्तु 31 मार्च, 2003 के पश्चात् उसकी सेवाओं का विस्तारण नहीं किया गया । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रस्तुत अपीलार्थी को सभी पारिणामिक फायदों सहित विधि सहायक के रूप में सेवा में वापस ले लिया जाए । एकल न्यायाधीश ने यह निदेश दिया कि प्रस्तुत अपीलार्थी को उस तारीख से जब इस न्यायालय के तारीख 16 सितम्बर, 1992 के आदेश के अनुसरण में रिक्ति उद्भूत हुई थी, नियमित पद पर आमेलित किया जाए । किन्तु उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने उसके नियमितीकरण के दावे को खारिज कर दिया किन्तु विश्वविद्यालय को यह निदेश दिया कि अपीलार्थी के मामले पर लागू नियमों के अनुसार विचार किया जाए और उसे अधिक आयु के आधार पर नियमितीकरण से वंचित न किया जाए । इसी बीच उसे संदत्त अधिक वेतन की वसूली का नोटिस दिया गया । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम रखा किन्तु वसूली संबंधी नोटिस को अमान्य ठहराया और तद्नुसार अपीलों का निपटारा करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – वह रीति जिसमें नियमितीकरण के दावे पर विचार किया जाना चाहिए, अनेक मामलों में इस विनिश्चय की विषयवस्तु रहा है । इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने इस विषय पर पूर्ववर्ती मामलों में सविस्तार चर्चा की है । पूर्ववर्ती विनिश्चय में जो कुछ अभिनिर्धारित किया

गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, नियमितीकरण के विषय में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों में कोई त्रुटि नहीं है । (पैरा 12)

विश्वविद्यालय द्वारा पारित आदेश किसी विशिष्ट वेतनमान पर यू.जी.सी. वेतनमान संदत्त करने के लिए गठित समिति की सिफारिशों के आधार पर किया गया था जो कि सुसंगत समय पर लागू होता था और जो कि पुनरीक्षित वेतनमान था । ऐसा होने के कारण, यह मत सही नहीं है और इसे कायम नहीं रखा जा सकता कि उसे इस न्यायालय के आदेश के प्रतिकूल संदाय किया गया है । तद्नुसार, वसूली संबंधी नोटिस कायम नहीं रखा जा सकता । अपीलार्थी उस सीमा तक फायदे का हकदार है । (पैरा 15)

**अवलंबित निर्णय**

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2006] | (2006) 4 एस. सी. सी. 1 : **सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य** बनाम **उमा देवी(3) और अन्य** । | 13 |

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की सिविल अपील सं. 130.**

2003 की खंड न्यायपीठ सिविल विशेष अपील (डब्ल्यू) सं. 407 और 2003 की खंड न्यायपीठ सिविल प्रकीर्ण पुनरीक्षण याचिका सं. 56 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जोधपुर न्यायपीठ के क्रमशः तारीख 5 सितम्बर, 2003 और 5 फरवरी, 2004 के अंतिम निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** सर्वश्री जयन्त दास, के. विजयन और अजीत पुडुसेरी

**प्रत्यर्थियों की ओर से** सर्वश्री अरुणेश्वर गुप्ता, नवीन कुमार सिंह, मुकुल सूद, शाश्वत गुप्ता और (सुश्री) शिखा टंडन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) अरिजीत पसायत ने दिया ।

**न्या. (डा.) पसायत** – इजाजत दी जाती है ।

2. इन अपीलों में राजस्थान उच्च न्यायालय की जोधपुर स्थित खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए उस निर्णय को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय ( जिसे संक्षेप में 'विश्वविद्यालय' कहा

गया है ) के वर्तमान कुलपति और अन्य व्यक्तियों द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की शुद्धता को प्रश्नगत करते हुए फाइल की गई सिविल विशेष अपील भागतः मंजूर की गई थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश द्वारा, जिसे खंड न्यायपीठ के समक्ष आक्षेपित किया गया था, यह अभिनिर्धारित किया कि विश्वविद्यालय द्वारा पारित तारीख 25 अप्रैल, 2003 का आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं था और कुलपति और विश्वविद्यालय, दोनों को यह निदेश दिया गया था कि प्रस्तुत अपीलार्थी को सभी पारिणामिक फायदों सहित विधि सहायक के रूप में सेवा में वापस ले लिया जाए । एकल न्यायाधीश ने विश्वविद्यालय और कुलपति को यह निदेश दिया कि प्रस्तुत अपीलार्थी को उस तारीख से जब इस न्यायालय के तारीख 16 सितम्बर, 1992 के आदेश के अनुसरण में रिक्ति उद्भूत हुई थी, नियमित पद पर आमेलित किया जाए ।

3. तथ्यात्मक पृष्ठभूमि संक्षेप में इस प्रकार है ।

4. अपीलार्थी ने एलएल.एम. डिग्री वर्ष 1977 में अर्जित की । उदयपुर विश्वविद्यालय ने, जिसका नाम बदलकर मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय कर दिया गया था, उसे अपने उदयपुर स्थित विधि महाविद्यालय में तदर्थ आधार पर सहायक आचार्य के नियमित वेतनमान में सहायक विधि आचार्य के रूप में नियुक्त किया । अपीलार्थी इस पद पर नियमित वार्षिक ग्रेड वेतनवृद्धि पाने का भी हकदार था जो कि परिणामस्वरूप सहायक आचार्य के रूप में उसकी हैसियत में की गई सेवा के अनुक्रम में उसे दी गई थी । बाद में, वर्ष 1983 में अपीलार्थी का सहायक आचार्य के पद पर नियमित आधार पर चयन के प्रयोजनों के लिए साक्षात्कार लिया गया । तथापि उसका चयन नहीं हो पाया और परिणामस्वरूप उसकी सेवाएं 31 मई, 1983 के पश्चात् बनी नहीं रहीं । इस प्रकार उसने उदयपुर विश्वविद्यालय के विधि महाविद्यालय में तदर्थ आधार पर सहायक आचार्य के नियमित वेतनमान में 14 नवम्बर, 1977 से 31 मई, 1983 तक सहायक आचार्य के रूप में कार्य किया । लगभग नौ मास के अंतराल पर उसे तारीख 23 फरवरी, 1984 को विश्वविद्यालय में विधि सहायक के पद पर फिर से नियुक्त किया गया किन्तु यह नियुक्ति बिना नोटिस दिए समाप्त की जा सकती थी । बाद में विधि सहायक के पद को विश्वविद्यालय के तारीख 19 सितम्बर, 1987 के आदेश द्वारा विधि सहयोजक(एसोसिएट) के रूप में पुनर्पदाभिहित कर दिया गया । अपीलार्थी को विधि सहायक/विधि सहयोजक के रूप में 1200/- रुपए प्रति मास का

समेकित वेतन संदत्त किया गया । तारीख 19 जून, 1987 के आदेश द्वारा समेकित वेतन बढ़ाकर 1620/- रुपए प्रति मास कर दिया गया । विश्वविद्यालय ने तारीख 3 मार्च, 1990 को अपीलार्थी के ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के कारण तारीख 14 नवम्बर, 1988 से अपीलार्थी की सेवाएं समाप्त कर दीं । यह अनुपस्थिति इस तथ्य के कारण हुई थी कि वह दिल्ली विश्वविद्यालय में पीएच.डी करने के लिए चला गया ।

5. अपीलार्थी द्वारा पीएच.डी. डिग्री अर्जित करने के पश्चात् उसे विश्वविद्यालय ने तारीख 8 फरवरी, 1990 के अपने आदेश द्वारा अंतरिम व्यवस्था के रूप में 31 मार्च, 1991 तक या विधि सहयोजक के पद पर किसी अभ्यर्थी के चयन और उसकी नियुक्ति होने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, 2070/- रुपए प्रति मास के नियत वेतन पर विधि सहायक के पद पर पुनः नियुक्त कर लिया गया । विधि सहयोजक के रूप में नियुक्ति को समय-समय पर बढ़ाया गया और उसे अंतिम विस्तारण तारीख 31 मार्च, 2003 तक दिया गया था । तारीख 31 मार्च, 2003 के पश्चात् उसकी सेवाओं का विस्तारण नहीं किया गया था जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी विश्वविद्यालय का कर्मचारी नहीं रहा था । विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ने तारीख 25 अप्रैल, 2003 के अपने पत्र द्वारा इस संबंध में उदयपुर के विधि महाविद्यालय के संकायाध्यक्ष को यह सूचित किया कि विधि सहयोजक के रूप में अपीलार्थी की अस्थायी नियुक्ति की अवधि तारीख 31 मार्च, 2003 से परे बढ़ाई नहीं गई है ।

6. तथ्यों का वर्णन पूरा करने की दृष्टि से उस गतिविधि के प्रति निर्देश करना आवश्यक है जो अनुसंधान सहायकों/सहयोजकों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं का एक समूह फाइल करने के परिणामस्वरूप घटी जो उन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा 1 जनवरी, 1973 से अनुदान आयोग द्वारा सिफारिश किया गया 700-1600 रुपए का वेतनमान देने से इनकार करने के कारण फाइल की थीं । यद्यपि विश्वविद्यालय ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित कर दिया था और शिक्षण स्टाफ के सदस्यों की दशा में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतनमान मंजूर कर दिए थे तथापि उसने अनुसंधान सहायकों/सहयोजकों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतनमान का फायदा प्रदान नहीं किया था ।

7. अपीलार्थी भी इस न्यायालय के समक्ष रिट याचियों में से एक याची था । रिट याचिकाओं के उस समूह में इस न्यायालय ने याचियों की

इस मांग को अस्वीकार कर दिया कि उन्हें 700-1600 रुपए के वेतनमान में रखा जाए । तथापि, इस न्यायालय ने यह निदेश दिया कि अनुसंधान सहयोजकों को 700/- रुपए प्रति मास के मूल वेतन में रखकर, जो कि 700-1600 रुपए के वेतनमान का न्यूनतम वेतन था, आने वाला समेकित वेतन अनुज्ञात किया जाए । इस न्यायालय ने 700/- रुपए प्रति मास का मूल वेतन पाने वाले नियमित कर्मचारियों को अनुज्ञेय भत्तों के रूप में धनीय फायदे भी अनुज्ञात किए । यह स्पष्ट किया गया कि नियुक्तियां जैसी थीं वैसी बनी रहेंगी और पदधारी मात्र इस कारण अनुसंधान सहायकों के काडर के नहीं होंगे कि उनके समेकित वेतन की संगणना अनुसंधान सहायक को अनुज्ञात वेतनमान के न्यूनतम वेतन के आधार पर करने का आदेश किया गया है । इसके अतिरिक्त, यह भी स्पष्ट किया गया कि उनकी बराबरी प्राचार्यों/सहायक आचार्यों से नहीं की जाएगी । वे वही कर्तव्य करते रहेंगे जो वे कर रहे थे जिसमें सहायक आचार्यों को सहायता प्रदान करना भी शामिल है । उन्हें पुनरीक्षित समेकित वेतन का फायदा अनुसंधान सहयोजकों के रूप में उनकी नियुक्ति की तारीख से दिया गया था । याचियों की ओर से इस न्यायालय के समक्ष इस बात पर जोर दिया गया कि हालांकि उन्होंने अनुसंधान सहयोजकों के रूप में काफी वर्षों से काम किया है फिर भी उन्हें अभी भी तदर्थ कर्मचारी माना जा रहा है और उन्हें सेवा की सुरक्षा भी उपलब्ध नहीं है । इस न्यायालय ने, याचियों के अभिवाक् को ध्यान में रखते हुए, निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "हम यह बात प्राधिकारियों पर छोड़ देते हैं कि वे ऐसी स्कीम तैयार करने की साध्यता के संबंध में विचार करें जिसके अधीन ऐसे अनुसंधान सहयोजकों को अनुसंधान सहायकों के नियमित काडर में जैसे ही उसमें रिक्तियां उद्भूत हों, आमेलित किया जा सके । चूंकि शैक्षिक अपेक्षाएं, चयन प्रक्रिया और कार्य की रूपरेखा भी समान है इसलिए ऐसी स्कीम कर्मचारियों तथा विश्वविद्यालय के परस्पर फायदे के लिए हो सकती है और इससे कर्मचारियों को सेवाकाल की सुरक्षा मिलेगी और विश्वविद्यालय को अनुभवी कर्मचारी मिलेंगे । हम यह प्रत्याशा करते हैं कि विश्वविद्यालय तुरंत ऐसी स्कीम तैयार करने की साध्यता की परीक्षा करेगा ।"

8. इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए और प्रबंध बोर्ड द्वारा गठित समिति की सिफारिश के आधार पर कुलपति ने अपीलार्थी को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का वेतनमान अनुज्ञात कर दिया ।

उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में तारीख 27 दिसम्बर, 1999 को एक वचनबंध दिया गया था । यद्यपि आरंभ में अपीलार्थी को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का वेतनमान प्राप्त करने के लिए अनुज्ञात किया गया था तथापि तारीख 13 जनवरी, 2003 को इस संबंध में कारण दर्शाने वाला एक नोटिस जारी किया गया कि जो अधिक संदाय किया गया है उसकी उससे वसूली क्यों न की जाए । उस नोटिस में इस न्यायालय के तारीख 16 सितम्बर, 1992 के आदेश के प्रति निर्देश किया गया जिसके द्वारा यह निदेश दिया गया था कि अनुसंधान सहयोजक को वही समेकित वेतन दिया जाए जो उन्हें 700/- रुपए प्रति मास के मूल वेतन में रखने के पश्चात् निकलता है । यह उपदर्शित किया गया था कि अपीलार्थी को गलती से यू.जी.सी. वेतनमान दिया गया था और इसके कारण अधिक संदाय हुआ था । इसके बाद, विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ने उदयपुर, विधि महाविद्यालय के संकायाध्यक्ष को यह सूचित किया कि प्रबंध बोर्ड के विनिश्चय के अनुसार, अपीलार्थी की अस्थायी नियुक्ति की अवधि 31 मार्च, 2003 से परे बढ़ाई नहीं गई थी । यही आदेश और कारण बताओ नोटिस विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष चुनौती की विषयवस्तु बने, जिसने, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, रिट याचिका मंजूर कर ली ।

9. इस आदेश को खंड न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी गई, जिसने, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उस आदेश को भागतः उपांतरित कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि जैसा कि दावा किया गया था, नियमितीकरण अनुज्ञात नहीं किया जा सकता किन्तु यह निदेश दिया कि अपीलार्थी के मामले पर लागू नियमों के अनुसार मापदंड का अनुसरण करते हुए विचार किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त यह निदेश दिया गया कि अपीलार्थी को चयन प्रक्रिया के अधीन लाते हुए, उसके द्वारा की गई पिछली सेवा को भी सम्यक् महत्व दिया जाना है । इसके अलावा यह निदेश दिया गया था कि उसे इस आधार पर नियमितीकरण से वंचित नहीं किया जाना है कि उसकी आयु अधिक हो गई है । किन्तु कोई अन्य अनुतोष नहीं दिया गया था ।

10. अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल ने अपीलों के समर्थन में यह निवेदन किया कि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य के प्रभाव पर विचार नहीं किया कि अपीलार्थी उच्च अर्हताप्राप्त था और उसने एक दशक से भी अधिक की अविच्छिन्न और निष्कलंक सेवा की थी । उसे नियमितीकरण से वंचित करना असाम्यापूर्ण और अन्यायोचित होगा । इसके अतिरिक्त, यह

निवेदन किया गया कि इस आधार पर दिया गया नोटिस आधारहीन है कि अधिक संदाय किया गया है । यह निष्कर्ष वस्तुतः सही नहीं है कि अधिक संदाय किया गया है । इस न्यायालय के आदेश का गलत निर्वचन किया जा रहा है ।

11. उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनर्विलोकन याचिका फाइल की गई थी जो कि खारिज कर दी गई । किन्तु तथापि अनुपालन के लिए समय नियत किया गया था ।

12. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय का समर्थन किया ।

13. वह रीति जिसमें नियमितीकरण के दावे पर विचार किया जाना चाहिए, अनेक मामलों में इस विनिश्चय की विषयवस्तु रहा है । **सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य** बनाम **उमा देवी(3) और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने इस विषय पर सविस्तार चर्चा की । उस विनिश्चय में जो कुछ अभिनिर्धारित किया गया है उसे ध्यान में रखते हुए, नियमितीकरण के विषय में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों में कोई त्रुटि नहीं है ।

14. यह प्रश्न शेष रहता है कि क्या अभिकथित अधिक संदाय के बारे में विश्वविद्यालय का दृष्टिकोण सही है । तारीख 27 दिसम्बर, 1999 के आदेश में यह उपदर्शित किया गया था कि अपीलार्थी को तारीख 1 जनवरी, 1996 से 8000-275-13500 रुपए के वेतनमान में रखा जाएगा । उसे केवल वेतनमान न कि पदनाम के प्रयोजनार्थ सहायक आचार्य के समतुल्य वेतनमान का हकदार माना गया था । इस न्यायालय ने तारीख 16 सितम्बर, 1992 के अपने आदेश में यह निदेश दिया कि याचियों को 700-1600 रुपए के वेतनमान में रखते हुए उसका समेकित वेतन निकाला जाए, जो कि उस वेतनमान का न्यूनतम है और 700/- रुपए प्रति मास का मूल वेतन पाने वाले नियमित कर्मचारी को अनुज्ञात भत्तों के रूप में उसके फायदे अनुज्ञात किए जाएं ।

15. विश्वविद्यालय द्वारा पारित आदेश किसी विशिष्ट वेतनमान पर यू.जी.सी. वेतनमान संदत्त करने के लिए गठित समिति की सिफारिशों के आधार पर किया गया था जो कि सुसंगत समय पर लागू होता था और जो

---

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 1.

कि पुनरीक्षित वेतनमान था । ऐसा होने के कारण, यह मत सही नहीं है और इसे कायम नहीं रखा जा सकता कि उसे इस न्यायालय के आदेश के प्रतिकूल संदाय किया गया है । तदनुसार, वसूली संबंधी नोटिस कायम नहीं रखा जा सकता । अपीलार्थी उस सीमा तक फायदे का हकदार है ।

16. अपीलों का निपटारा किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है ।

अपीलों का तदनुसार निपटारा किया गया ।

ग्रो.

---

**[2007] 3 उम. नि. प. 197**

## मध्य प्रदेश राज्य

बनाम

## बच्चू दास उर्फ बलराम और अन्य

10 जनवरी, 2007

**न्यायमूर्ति (डा.) अरिजीत पसायत और न्यायमूर्ति एस. एच. कपाड़िया**

**दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 378 – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – यद्यपि दोषमुक्ति के आदेश में सामान्यतया हस्तक्षेप नहीं किया जाता है, तथापि यदि न्यायालय के पास बाध्यकर और सारभूत कारण हों और जहां दोषी को दोषमुक्त किए जाने से अन्याय होना संभव हो तो न्यायालय उस आदेश में साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करके हस्तक्षेप कर सकता है ।**

**दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304, भाग 2 – धारा 304, भाग 2 के अधीन दोषसिद्धि – औचित्यता – साक्षियों के साक्ष्य का असंगत होना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में दिए गए बयान का न्यायालय में दिए गए बयान से भिन्न होना – एक साक्षी का अभिकथित घटना के बारे में मौन रहना – किसी साक्षी के मौन रहने मात्र से अभियोजन पक्ष का बयान संदेहास्पद नहीं बन जाता है और इस बाबत साक्ष्य की विश्वसनीयता पर भी बल दिया जाना होता है ।**

प्रत्यर्थियों के विरुद्ध निम्नलिखित अभियोगों के कारण विचारण की